शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

अहिंसा का गांधी दर्शनः एक आलोचना

- शंकर शरण
प्रोफेसर, समाज विज्ञान विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

द्वितीय-भाग

अहिंसा का गांधी दर्शन : एक आलोचना

- शंकर शरण*

भारतीय राजनीति ने अपनी संघर्ष-यात्रा के अनुभव से अनेक राजनैतिक सिद्धांत निगमित किये हैं। उन्हीं में एक सिद्धांत 'अहिंसा' का है। प्रस्तुत आलेख में गाँधीजी की पुस्तक 'हिन्द स्वराज' के माध्यम से उनक समकालीन राजनैतिक परिस्थितियों, विचारों, दर्शनों के आलोक में 'अहिंसा' का परीक्षण करते हुए उसके दार्शनिक-राजनैतिक सिद्धांत के संभावना की गहरी छानबीन की गयी है। प्रस्तुत है गतांक से आगे का भाग .....

विषय संकेतः- गाँधी दर्शन, अहिंसा, हिन्द स्वराज

दार्शनिक मूल्यांकन - (श्रीअरविन्द की दृष्टि में)

अहिंसा पर श्री अरविन्द के विचारों का महत्व व्यवहारिक राजनीतिक के साथ-साथ तत्व-दर्शन के अर्थ में भी है। वह न केवल वेद, उपनिषद, योग-शास्त्र के प्रकांड पंडित थे, बल्कि उन्हें यूरोपीय मनीषा और जीवन का भी गंभीर ज्ञान व अनुभव था। गाँधी की महत्ता मूलतः राजनेता होने से बनी। गाँधी की वैचारिक महत्ता का मूल स्त्रोत उनकी महती राजनीतिक भूमिका में है, विद्वत् विश्लेषण में यह विस्मृत नहीं करना चाहिए। अतः श्रीअरविन्द की दृष्टि में गाँधी की अहिंसा और सत्याग्रह का मूल्यांकन तत्व-दर्शन के क्षेत्र में रखना चाहिए।

जिस सत्याग्रह को ***हिन्द स्वराज*** में बड़े हौसले से प्रस्तुत किया गया है, उसकी स्थिति लेनिन के बोल्शेविज्म जैसी बनी रही जिसका अर्थ किसी भी मामले में केवल वही हो सकता था जो लेनिन कहें। इसी प्रकार, गाँधी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह का वास्तविक अर्थ, रूप-रेखा, सीमाएं आदि क्या हैं यह कभी कोई और विश्वासपूर्वक नहीं कह सकता था। फिर लेनिन की तरह ही, गाँधी के जीवन और व्यवहार से भी उसे स्थिर करना असंभव था। क्योंकि उसका प्रयोग, विस्तार संशोधन या परित्याग - सब कुछ राजनीतिक स्थिति को देखते हुए होता था। इसीलिए गाँधी के जीवित रहते या बाद भी सत्याग्रह के सिद्धांत की कोई आधिकारिक या विश्वसनीय प्रस्तुति नहीं की जा सकी। केवल उसकी तारीफ की जाती है।

इस पृष्ठ-भूमि में श्रीअरविन्द के 11 जनवरी, 1939 को अपने शिष्यों के बीच चर्चा में कहे शब्दों पर ध्यान दें, ''गाँधी यह स्वीकार करने के लिए विवश हैं कि (सत्याग्रह यानी) निष्क्रिय प्रतिरोध के विज्ञान को उनका कोई शिष्य नहीं जानता। वस्तुतः वे कहते हैं, कि वही अकेले व्यक्ति हैं जो सत्याग्रह के बारे में सब कुछ जानते है। यह सत्याग्रह के लिए बहुत आशाजनक बात नहीं है, यह देखते हुए कि इसे मानवता की समस्याओं के सामान्य समाधान के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।''[1]

सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह आदि अनेक विचारों को आध्यात्मिकता से भी जोड़कर देखा जाता है। जैसा पूर्व पक्ष के आलेख वांडा दीनोवस्का के पत्र से भी जाहिर है, गाँधीजी के क्रिया-कलापों को राजनीति के साथ-साथ आध्यात्मिक रूप में देखा जाता था। किंतु जिस चीज पर ध्यान नहीं दिया जाता, वह कि भारतीय राजनीति में गाँधी के अवतरण से पहले लगभग सौ वर्षों से धीरे-धीरे हमारे आधुनिक शिक्षित वर्ग की मानसिकता पर यूरोपीय अवधारणाओं का वर्चस्व होता जा रहा था। इसका एक भारी दुष्परिणाम यह हुआ कि भारतीय मनीषा के कई बहुमूल्य शब्दों को उसके सहज अर्थ से वंचित कर उन्हें किसी न किसी यूरोपीय शब्द के अनुवाद के रूप में - अर्थात एक नए, विजातीय अर्थ से - जाना जाने लगा। जैसे, धर्म 'रिलीजन' का

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

अहिंसा का गांधी दर्शनः एक आलोचना

- शंकर शरण
प्रोफेसर, समाज विज्ञान विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

समानार्थी हो गया, ऋतु 'सीजन' का, गुरू 'टीचर' का, ब्राह्मण 'प्रीस्ट' का, विद्या 'नॉलेज' का, अधिकार 'राईट का, आदि। अंग्रेजी शिक्षा की अहं-क्रेंद्रित नीति का फल था कि यूरोपीय अवधारणाओं के लिए सही भारतीय शब्द तय करने के बदले किसी गंभीर भारतीय शब्द को उसके अर्थ से वंचित कर नए अर्थ डाल दिए गए। तिब्बती विद्वान सामधोंग रिम्पोछे के शब्दों में कहें तो 'कहीं से आया तेल घर में रखने की आवश्यकता हुई तो नया बर्तन खोजने के बदले दूध के लौटे से दूध फेंककर उसी में तेल रख लिया गया। हमारे कई शब्दों के साथ यह स्थाई विडंबना बन गई है कि वे अर्थ-च्युत हो गए हैं।

आध्यात्म, अहिंसा और सत्याग्रह के साथ भी स्थिति भिन्न-भिन्न नहीं है। जिन अर्थों में गाँधी ने उनका प्रयोग किया है, वे सभी भारतीय अर्थ नही हैं, इसका एक संकेत तो पूर्व आलेख में वर्णित पोलिश विदुषी वांडा दीनोवस्का के अवलोकन से भी मिलता है। किंतु रामायण या भगवद्गीता के अध्ययन से स्वयं भी सरलता से देखा जा सकता है कि हिंसा ओर अहिंसा पर गाँधी के विचरों की उसमें कहीं पुष्टि नहीं मिलती।

गाँधी के भारतीय राजनीति में सक्रिय होने के बाद ही अहिंसा का राजनीतिक सिद्धांत चर्चा का विषय बना। चूँकि गाँधी स्वयं को सनातनी हिन्दू कहते थे, और गीता तथा रामचरितमानस के भक्त थे, इसलिए काल-क्रम में यह भी माना जाने लगा कि अहिंसा का सिद्धांत एक हिन्दू सिद्धांत है। स्वयं गाँधी गीता को अपने सिद्धांत क पक्ष में मानते थे। किंतु श्री अरविन्द के अनुसार:

गीता में अहिंसा नहीं है। यदि कुछ लोग, महात्मा (गाँधी) समेत, कहते हैं कि गीता में वर्णित युद्ध या संघर्ष मात्र भावात्मक अर्थ में हैं, तब *अपरिहार्येर्थे* तथा *'हन्यमाने शरीरे'* - 'अवश्यंभावी स्थिति' तथा 'शरीर के मारे जाने'-का क्या बनेगा तब मारे गए लोगों के लिए शोक-दुःख-का क्या अर्थ करोगे? मुझे लगता है कि (अहिंसा) के वैसे अर्थ निकलाना एक मानसिक प्रवृत्ति के दोष का परिणाम है। उनमें वह बौद्धिक तीक्ष्णता और निष्ठा नहीं है जो धैर्य और शांति के साथ अर्थ ग्रहण कर सके।

इसकी चर्चा गाँधी के अनुयायियों तक पहुँची। किसी ने श्री अरविन्द लिखित प्रसिद्ध ग्रंथ एसेज ऑन गीता के छठे अध्याय को गाँधी के अनुयायी अपने किसी मित्र के पास साबरमती आश्रम भेज दिया। उसका मित्र कोई उत्तर न दे सका। फिर, स्वयं गाँधीजी के पुत्र देवदास ने पांडिचेरी से गाँधीजी को वह पुस्तक भिजवाई। गाँधीजी ने कहा कि वह बौद्धिक रूप से तो श्री अरविन्द की व्याख्या का उत्तर देने में समर्थ नहीं है। फिर भी वह अपने विचारों को नहीं बदल सकते।

संभवतः इसका कारण यह था कि वे यह नहीं चाहते थे कि किसी बुराई को मिटाने के लिए उस बुराई से जूड़ी बहुत सी चीजों को भी मिटाना आवश्यक हो सकता है। फिर यह भी कि बुराई के प्रतिकार के लिए आत्मिक बल और शारीरिक बल, शस्त्र बल, दोनों का उपयोग हो सकता है।

इसी प्रसंग में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर श्री अरविन्द ने अपना विचार दिया था जिसकी सार-गर्भित और सटीक टिप्पणी संभवतः आज तक किसी ने नहीं की है। किसी ने मुलतान में हुए दंगों पर महामना मदन मोहन मालवीय के भाषण और राजगोपालाचारी की बातों का उल्लेख किया। यह 18 अप्रैल 1923 की बात है। वह सुनकर श्री अरविन्द ने कहा:

मुझे कहते हुए दुःख है कि इस हिन्दू-मुस्लिम एकता को वे झक का रूप दे रहे हैं। तथ्यों की उपेक्षा करने से कोई लाभ नहीं, कभी न कभी हिंदुओं को मुसलमानों से लड़ना पड़ सकता है और इसके लिए उन्हें तैयार होना चाहिए। हिन्दू-मुस्लिम एकता का अर्थ हिन्दुओं की उदारता ने रास्ता दे दिया है। सबसे अच्छा समाधान यही होगा कि हिन्दुओं को संगठित होने देना चाहिए और तब हिन्दू-मुस्लिम एकता स्वयं अपनी देख-भाल कर लेगी, इससे अपने आप समस्या सुलझ जाएगी। नहीं तो, हम इस झूठे संतोष में आराम करने लगते हैं कि हमने एक कठिन समस्या का समाधान कर लिया है, जबकि वास्तव में हमने केवल उसे टाला भर है।

इसकी तुलना ऊपर उल्लिखित रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचारों से की जा सकती है। वह भी कहते हैं कि जब तक सामाजिक बल में दोनों समुदाय समकक्ष नहीं होगे, तब तक राष्ट्रीय एकता नहीं बन सकती। ऊपरी उपचार केवल 'एह बाह्य' है, जिससे रोग बना रहेगा। यह सोचने का विषय है कि ऐसे सहज, न्यायोचित समाधान को गाँधी समेत कांग्रेस नेतृत्व ने अपनाना क्यों नहीं उचेत समझा क्या उसी प्रवृत्ति के कारण जिस का

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

अहिंसा का गांधी दर्शनः एक आलोचना

- शंकर शरण
प्रोफेसर, समाज विज्ञान विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

लोहिया ने बार-बार उल्लेख किया है, हम नहीं कह सकते। जो भी हो, हिन्दू-मुस्लिम एकता पर श्री अरविन्द ने उक्त विचारों को सभी राजनीतिक दलों के सभी कार्यालयों में देश भर में टाँग देना चाहिए। संभवतः केवल इसी एक काम से आने वाले समय में असंख्य निदोष लोगों की जान बच जाएगी।

सत्याग्रह या अहिंसा का सहारा लेने वाले मनुष्य की प्रकृति पर वास्तव मं क्या प्रभाव होता है, इसके प्रति गाँधी ने संभवतः गंभीरता पूर्वक विचार नहीं किया। उन्हें लगता था कि इससे मनुष्य की शुद्धि होती है। किंतु जब मनुष्य स्वेच्छा से अपने को किसी पीड़ा को कष्ट सहने में लगाता है, तो केवल उसकी प्राण-शक्ति मजबूत होती है क्योंकि पीड़ा प्राण की ही होती है। उसकी मानसिक शुद्धि नहीं होती। ऐसी पीड़ा सहने वाले मनुष्य के हथ जब शक्ति आती है तो वह और अत्याचारी बन जाता है। वांडा दीनोवस्का ने गाँधी के अनेक अनुयायियों मेमं जो दबी हुई कुंठा, घृणा, बदले की भावना, दुश्मन को किसी और से भी झटका लगने पर खुशी, आदि देखी थी, उसे इसी तरह समझा जा सकता है।

श्री अरविन्द ने अपने गीता प्रबंध (एसेज ऑन गीता) में स्वेच्छा से कष्ट सहने वालों में इस प्रवृत्ति की विस्तार से चर्चा की है। सत, रज, तम इन त्रि-गुण स्वभावों का विश्लेषण करते हुए वह कहते हैं कि राजसिक भाव वाले लोगों में बल प्रयोग की प्रवृत्ति होती है, जिसे किसी उच्च आदर्श से जोड़कर उकस रूपांतरण भर किया जा सकता है। गाँधीवादी सत्याग्रह में यह नहीं होता। वह पहले तो सभी लोगों को समान स्वभाव का मानकर चलता है (जैसे, हिन्द स्वराज में)। फिर उन सबके लिए एकतरफा, शांतिपूर्वक कष्ट सहने तक ही स्वयं को सीमित रखने का आग्रह है। इसीलिए ऐसे सत्याग्रह में मात्र शब्दोच्चार, पाखंड ओर मिथ्याचार प्रवेश पा जाते है। एक व्यत्ति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, किंतु उसे गाँधी बाबा के सिद्धांतों को स्थापित करना है। तब वह केवल कुछ शब्दों के निरंतर दुहराव और ओढ़े हुए सदभाव के सिवा क्या कर सकता है, निस्संदेह, सभी गाँधीपंथी ऐसे नही थे, पर जिन्होंने सच्चे होने का प्रयन्त किया वह वे थे जिनकी प्रवृत्ति पहले से सात्विकता की ओर थी। वह गाँधीवादी सिद्धांत का प्रभाव न था। इसीलिए अधिकांश गाँधीवादी मात्र बाह्मडंबर तक रह गए। यह गाँधीवादी सत्याग्रह और अहिंसा की वह सच्चाई थी जिसे गाँधी कई बार देखकर भी कोई उपाय नहीं खोज पाए। जिसे वह 'देश अभी सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं हुआ है' या 'उसेने अपना सबक नहीं सीखा है, कहते थे, वह वास्तव में सत्याग्रह की दोषपूर्ण धारण का दोष था। वह गाँधी का दोष था।

हिंसा ओर अहिंसा के प्रति मूल भारतीय हिन्दू धारणा एवं व्यवस्था अधिक कारगर थी। वह हिंसा बल की क्षमता को उचित स्थान प्रदान करती थी। जिस में लड़ने का तेज हो वह क्षत्रिय बनता था (केवल जन्मना क्षत्रिय ही नहीं होते थे)। इस प्रकार उसकी सामर्थ्य ओश्र सहज प्रवृत्ति सामान्य से ऊपर उठा दी जाती थी। उसे शौर्य, वीरत्व, निर्बलों, सज्जनों और राज्य की रक्षा के भाव से जोड़ा जाता था। हिन्दू धर्म का प्रयास था कि उसके तेज, बल-प्रवृत्ति को आध्यात्मिक भाव से संबद्ध करे। उसी से उस चीज को प्राप्त करने में सफलता मिलती थी जिसमें गाँधी का निष्क्रिय प्रतिरोध विफल रहा और रहेगा। श्री अरविन्द के शब्दों में, ''क्षत्रिय वह था जो कोई अत्याचार न होने दे, जो उससे लड़े और जो स्वयं किसी पर अत्याचार न करे। यही आदेर्श था''। इस आदर्श से हट कर एक काल्पनिक मॉडल से कुछ पाना चाह रहे थे। हिन्द स्वराज के सौ वर्ष बाद आज यह तो प्रमाणित है कि उनकी अहिंसा या सत्याग्रह से न कोई व्यक्ति समक्षम बना, न संस्था, न समुदाय, न देश। लोग ही इसके लिए तैयार न थे या आज भी नहीं हैं, यह कहना तो आँगन टेढ़ा जैसी बात हुई। प्रकारांतर स्वीकृत कि उस सिद्धांत द्वारा लोगों से इच्दित नहीं पाया जा सका।

फिर, यह गाँधीवादी सत्याग्रह और नेताओं का शब्दाडंबर और खुला मिथ्याचार ही था कि वे अपने व्यवहार से दूसरों पर दबाव डालते हुए भी उसकी परवाह नहीं करते थे। अहिंसा एक मानसिक अवस्था है, जो उन में कभी नहीं झलकती थी। जो चरखा न चलाए, वह कांग्रेस का सदस्य नहीं हो सकता। जो खादी न पहने, उसकी हँसी उड़ाई जाए। जो विदेशी वस्त्र पहने या न त्यागे, उसे बीच सड़क पर अपमानित किया जाए, तथा राह चलते व्यक्ति का विलायती मफलर या टोपी छीन कर भी जला दिया जाए - यह सब तो गाँधी के प्रथम बहिष्कार सत्याग्रह आंदोलन में ही भरपूर देखा गया था। ऐसी जबर्दस्ती कई मामलों में स्वयं गाँधी ने आरंभ की।

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

अहिंसा का गांधी दर्शनः एक आलोचना

- शंकर शरण
प्रोफेसर, समाज विज्ञान विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

जैसे, कांग्रेस सदस्याता की शर्त बनाना। उसे दोषपूर्ण बाह्यडंबर अथवा दूसरों पर अनुचित दबाव डालना समझना तो दूर रहा।

वास्तविक अहिंसा का आडंबर से या हिंसक आक्रमणकारी के समक्ष निष्क्रिय रहने से कोई संबंध नहीं है। हिंसा उस गाँधीवादी सत्याग्रही में भी हो सकती है जो ऊपर से शांत दिख रहा हो, किंतु अंतर में क्षुब्ध हो। अपने पार्टी प्रतिद्वदी या अंग्रेजों के गिरने, मरने की कामना कर रहा हो। दूसरी ओर, वह सैनिक, सिपाही या सशस्त्र व्यक्ति भी अहिंसक चित्त में हो सकता है जो कर्तव्य भाव से किसी शत्रु या अन्यायी पर प्रहार कर रहा है। उसमें घृणा भाव होना आवश्यक नही। वाघा सीमा पर भारतीय और पाकिस्तानी चौकियों के निकटवर्ती सैनिक आपस में प्रायः शिष्ट रहते हैं। देश की सीमाओं की रक्षा करने वाले सैनिक अथवा गाँव को अतंकवादियों से बचाने वाले सचेत वीर क्या प्रायः वैसे ही नहीं होते।

किसी आततायी, अत्याचारी, प्रतिपक्षी के प्राण लेते हुए भी केवल कर्तव्य भाव रहे। साथ ही, उसमें कर्त्त्व-भाव नहीं आए - न करने का अहंकार, न करते हुए दुःख। वैसे शस्त्रधारी को अहिंसक या धर्मप्राण कहना अधिक सही होगा। पूरी भगवतीगीता यही है।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि।।

अतः किसी पर डंडा उठा लेने मात्र से वह हिंसा या पाप है, गाँधी जी की यह व्याख्या नितांत अ-हिंदू है। गाँधी का बारं-बारं दुहराया गया यह कथन कि किसी भी हिंसक अत्याचारी या उग्रवादी के हलमा करने आने पर भी ''आप मर जाएं पर मारें नहीं'' भारतीय धर्म-शिक्षा के विरुद्ध है।

विचित्र बात यह है कि गाँधी हिन्दू धर्म की यह स्थिति स्वीकार करने और उसके स्थान पर अपने विचार को अधिक उपयुक्त ठहराने के बदले अपने विचार को ही सनातन धर्म की अथवा गीता की शिक्षा ठहराते हैं। मई 1924 में गाँधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के संबंध में एक लंबा व्तव्य दिया था। उसमें अहिंसा के अपने सिद्धांत में डाकुओं, लुटेरों ओर विदेशी आक्रमण की स्थिति में कुछ टूट दी थी। पर लगता है, यह उन्होंने खलीफत जिहाद की हार के बाद देश में जहाँ-तहाँ हिन्दुओं पर हुए वीभत्स मुस्लिम अत्याचारों'' के बाद उपजी वितष्णा पर मलहम लगाने के लिए किया था। यह कोई वास्तकवक संशोधन नहीं था। अहिंसा पर गाँधी का असली विचार पूर्ववत् बना रहा। क्योंकि जब 1946-47 में पंजाब और बंगाल के हिन्दुओं पर उन्हें खत्म करने और भगाने के लिए और बड़े तथा संगठित हमले हुए, तब गाँधी न अपने मूल विचार के अनुरूप, कि हर हाल में 'मर जाएं पर मारें नहीं'' वाली ही सलाह दी थी। उन्होंने कहा कि वही वीरता होगी। ठीक यही गाँधी ने यूरोप में नाजियों द्वारा 1941-45 के बीच यहूदियों के सामूहिक संहार पर कहा था। कि यहूदी बिना प्रतिकार किए मर गए, यही उचित था।

किंतु उस 1924 वाले वक्तव्य में एक विचित्रता यह थी कि गाँधी स्वयं को गीता का अधिकारी भी भाष्यकार समझते थे। उसी समय किसी हिन्दू शास्त्री ने गाँधी जी द्वारा की गई गीता की व्याख्या पर कुछ प्रश्न उठाए थे। उसक वक्तव्य में गाँधी इस पर आश्चर्य प्रकट करते हैं। कि कोई उनकी व्याख्या पर प्रश्न उठा सकता है। उसे पढ़कर श्री अरविन्द की टिप्पणी थी, ''उसी वक्तव्य में गाँधी जी ने स्वामी दयानंद सरस्वती की आलोचना की थी कि उन्होंने वेदों की अंध-पूजा जैसी आरंभ कर दी है। इस पर भी टिप्पणी करते हुए श्री अरविन्द कहते हैं कि अर्थशास्त्र में चरखे तथा खादी, तथा धर्म व दर्शन के क्षेत्र में अहिंसा के मामले में गाँधी स्वयं वही अंध-पूजा कर रहे हैं। चूँकि उसी वक्तव्य में गाँधी ने कुरान और बाइबिल की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी, इस पर भी श्री अरविन्द आपत्ति करते हैं, 'उन्होंने आर्य समाज की (वेदा की पूजा के लिए) आचोचना की किंतु मुहम्मदियों को क्यों छोड़ दिया, उनका वक्तव्य कुरान ओर ईसाइयत के प्रति अतीव श्रद्धा से भरा हुआ है जो बाइबिल, ईसा और सलीब की अंध-पूजा ही करता है।''

श्री अरविन्द लंबे समय तक गाँधी के विचारों और कार्यों का अवलोकन कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि उनके विचार यूरोपीय, ईसाई विचारों से गहरे प्रभावित थे। कि ''महात्मा एक यूरोपीय हैं, - वस्तुतः भारत में

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

अहिंसा का गांधी दर्शनः एक आलोचना

- शंकर शरण
प्रोफेसर, समाज विज्ञान विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

एक रूसी ईसाई।'' इस बात पर किसी के हैरत प्रकट करने पर श्री अरविन्द जोर देकर विस्तार से स्पष्ट करते है।

हाँ जब यूरोपियन लोग कहते हैं कि वह (गाँधी) अनेक ईसाइयों से बढ़कर ईसाई हैं, और ''आज के ईसा मसीह है'' तो वे बिलकुल ठीक कहते हैं। उनके सभी उपदेश ईसाइयत से लिए हुए हैं और यद्यपि उन उपदेशों का बाह्य-रूप भारतीय दिखता है, उसका सार-तत्व ईसाई है। वह पूरी तरह ईसा न भी हों किंतु हर हाल में वे उसी परंपरा में आते हैं।

वह अपने उपदेशों में अधिकांश टॉल्सटॉय और बाइबिल तथा जैन-दर्शन से प्रभावित हैं किसी भी स्थिति में भारतीय शास्त्रों से अधिक-उपनिषद, गीता की व्याख्या वह अपनी उसी दृष्टि से करते रहते है।''

तब कोई कहता है कि अनेक भारतीय गाँधी जी को आध्यात्मिक पुरुष समझते हैं। उसका उत्तर देते हुए श्री अरविन्द कहते हैं, ''क्योंकि यूरोपीय उन्हें आध्यात्मिक कहते हैं। जो उपदेश वह देते हैं वह भारतीय आध्यात्मक नहीं है बल्कि रूसी ईसाइयत, अहिंसा, कष्ट-सहन आदि से लिया गया है।

..... उनमें (गाँधी में) बौद्धिक आवेग है और एक बड़ा नैतिक आत्म-बल है लेकिन वह रूसियों से अधिक शुष्क हैं। पीड़ा सहने के सिद्धांत का जो उपदेश वह दे रहे हैं उसकी जड़ें पूरे यूरोप में केवल रूस में है।। दूसरे ईसाई देश उसमें विश्वास नही करते। अधिक से अधिक वे इसे मस्तिष्क में रखते हैं, पर रूसियों के तो रक्त में यह विचार है।''

गाँधी जी ने 1940 में अपनी एक राजनीतिक वसीयत लिखी थी। उसे गाँधी सेवा संघ में वितरित भी किया गया था। वहाँ से अभयदेव उसे पांडिचेरी लेते आए थे। जब श्री अरविन्द के समक्ष उस पढ़ा गया, तब भी उन्होंने टिप्पणी की, 'उनमें (गाँधी में) कोई चीज है जो पीड़ा में पीड़ा के लिए रस लेती है। यहाँ तक कि कष्ट उठाने की संभावना मात्र से उसे आनंद मिलता है। यद्यपि वे इसे उचित ठहराने के लिए बहतेरे तर्क देते हैं, किंतु तथ्य यह है कि उनमें कोई चीज है जो कष्ट सहने में सुख उठाती है। ..... एक ईसाई विचार ने उन्हें पकड़ लिया है।''

गाँधी ने एक बार कहा था कि अहिंसा में ऐसी शक्ति है वह हिटलर से भी कठोर पत्थर-ह्मदय को भी पिघला सकती है। पहले भी वह कह चुके थे कि, ''वज्र के समान कठोर हृदय वाला भी आत्मबल की अग्नि से पिघल सकता है'' (गोधरा, 3 नवंबर 1917)। यह प्रश्न अलग है कि तब वे किसी मुहम्मद अली, लियाकत अली, जिन्ना या वैसे अनेक 'मुस्लिम भाई' को उससे क्यों न पिघ्ला सके, यदि ही न पिघला तो हिटलर पिघल जाएगा, इस विचित्र बात को अभी यहीं रहने दें।

ध्यान देने योग्य यह है कि राजनीति में गाँधी का साबका अंग्रेजों से पड़ा था। अंग्रेज चरित्र अतिवाद से बचता है। वह अपनी अंतरात्मा के साथ शांति से रहना चाहता हें अंग्रेज लोग जनमत का ध्यान रखने वाले तथा अपनी छवि के प्रति संवदेनशील होते है।। वे दुनिया का मान-सम्मान भी चाहते हैं। इसलिए गाँधी को ऐसे विदेशी शासकों के साथ जब-तब अहिंसात्मक सत्याग्रह के साथ कुछ पाने का अवसर मिला। इस का श्रेय अहिंसा-सत्याग्रह को देना नितांत अत्युक्ति होगी। यदि उन्हें जर्मन नाजियों, रूसी निहिलिस्टों, स्तालिनवादियों या आज के तालिबान से साबका पड़ा होता तो वे गाँधी या किसी को भी तुरत रास्ते से हटा देते। तीन दशक तक उनका 'आग्रह' सुनने के लिए नहीं बैठे रहते। अतः अहिंसा-सत्याग्रह के मूल्यांकन में इस तथ्य को भी ध्यान रखना चाहिए।

दरअसल, अहिंसा की दार्शनिक, आध्यात्मिक निष्पत्तियों को सरसरी तौर पर सामजिक, राजनीतिक जीवन में जैसे भी उपयोग करने की चाह भोलेपान भीर है। आप किसी हिंसक उपद्रवी को भर तबीयत मार लेने दें तो उकस हृदय बदल जाएगा, यह कोरी प्रवंचना है। उसी प्रकार, कथित सत्याग्रह से किसी मिल मालिक या अंग्रेज सरकार ने कोई माँग मान ली, इससे यह नहीं प्रमाणित होता कि उसका हृदय परिवर्तन हुआ है। बल्कि केवल यह कि तात्कालिक परिस्थिति में वैसा करना उसे लाभदायक या अनिवार्य लगा। वैसा न करने के अन्य

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

अहिंसा का गांधी दर्शनः एक आलोचना

- शंकर शरण
प्रोफेसर, समाज विज्ञान विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

परिणामों को वह पसंद नहीं करता, इसलिए दबाव में उसने माँग स्वीकर कर ली। जैसा श्री अरविन्द ने कहा था, यदि यह कुछ बदलता भी है तो मस्तिष्क, न कि हृदय।

वस्तुतः निरपेक्ष रूप से अहिंसा का अवलंबन केवल संन्यासियों के लिए अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र में है। जहाँ कोई संत या संन्यासी अहिंसा को अपनी स्थाई टेक स्वीकार करता है और उसके परिणामम के प्रति निरपेक्ष रहता है। किंतु इसे समाज या राजनीति के लिए सिद्धांत बनाना अतिवादी परिकल्पना है। गाँधी हिन्द स्वराज (अध्याय 17) में संत तुलसीदास के 'दया धरम को मूल है..... '' को उद्धृत करते हुए भी वही सामान्यीकरण करते हैं। तुलसी ने उस अर्थ में वह नहीं कहा है, जैसे गाँधी प्रस्तुत करते हैं (अन्यथा, ''भय बिनु होई न प्रीति. ...'' का क्या होगा)। दार्शनिक शब्द में कहें तो गाँधी अधिकार - पात्रता की शर्त की अवहेलना करते हैं। हर कोई किसी कर्म या स्थिति का अधिकारी नहीं होता। दया, दान क्षमा, विद्या दंड आदि हर चीज के लिए पात्रता का सिद्धांत हिंदू विचार आर व्यवहार का प्रसिद्ध अंग रहा है।

इसे भुलाकर हर किसी को एक स्वभाव समझना, तथा हर किसी के प्रति अहिंसा की माँग में ईसाइयत प्रभावित यूरोपीय उदारवाद का ही अंश है। भारतीय परंपरा पात्र और कुपात्र का भेद करती है, जो किसी की स्थिति और प्रवृत्ति के आधार पर होता है। जिस किसी को किसी भी ज्ञान या कर्म क्षेत्र में प्रवेश देना हमारी परंपरा नहीं रही। नालंदा या तक्षशिला में द्वारपाल भी जो कार्य करते थे, वह यही था। जब राजा को अपना उत्तराधिकारी चुनने की आवश्यकता होती थी, उसकी कसौटी पात्रता होती थी। गुरु भी अपने आश्रम का उत्तराधिकारी तय करने में इसी की चिंता करते थे। जिसमें जिस कार्य की प्रवृत्ति हो, उसी को उत्तरदायित्व देना उपयुक्त देना उपयुक्त होता है। जिसमें राजसिक तेज है, उसे गाँधीवादी अहिंसा का स्वयंसेवक बना देना अंततः उसे क्षुब्ध, खंडित और विकृत ही बनाएगा। यह गाँधी-दर्शन नोट नहीं करता। वह हर हाल में अहिंसा को उचित ही नहीं, लाभकारी भी मानता है। किंतु यह बड़ी भूल है। श्री अरविन्द के शब्दों में,

..... एक वर्ग आक्रामकता से ऐसे सिकुड़ता है मानो व हपाप हो। उनकी पुकार है, घृणा का उपचार प्रेम से करों, अन्याय को न्याय से भगाओं, पाप को सदाचार से काटो'। प्रेम एक पवित्र नाम है।, पर उसकी चर्चा करना सरल है, प्रेम करना उतना सरल नहीं। ..... जो युद्ध से, उसे पाप समझकर और आक्रामकता को नैतिकता का पतन मानकर सिकुड़ते हैं। उनके लिए गीता सबसे उत्तम है।

शस्त्र न उठाने की टेक किसी संत के व्यक्तिगत व्यवहार के लिए सही हो सकती है (जैसा, उदाहरण के लिए, गौतम बुद्ध और अंगुलीमाल की कथा कहती है)। उसे समाज पर लागू मान लेना एक भयंकर भूल और एकदम भ्रामक जिद थी। वह विपरीत परिणाम देने वाली थी। देश का विभाजन और लाखों का संहार ठीक वही परिणाम था। लोहिया ने 1967 में अपने ठोस अवलोकन से वही कहा था, जिसे हिन्दी स्वराज से भी पहले, वर्ष 1908 में श्री अरविन्द ने सामान्य सत्य के रूप में रखा था। उनके शब्दों का मूल्यांकन करें।

यदि अहिंसा का गुण क्षत्रिय में आ जाए, यदि तुम कहो कि मैं मारूँगा नहीं, तो देश को बचाने वाला कोई नहीं रहेगा। लोगों की खुशी टूट जाएगी। अन्याय और अराजकता का बोलबाला हो जाएगा।। वही गुण दुःख का स्रोत बना जाएगा और लोगों में दुःख और डंड लाने में तुम साधन बन जाओगे।

यह बात अपने एक भाषण में श्री अरविन्द में 25 जून 1909 को खुलना (अब बंगालदेश) में कही थी। उसके ठीक अड़तीस वर्ष बाद क्या पूर्वी बंगाल और पश्चिमी पंजाब के हिंदुओं, सिखों का वही नहीं हुआ स्थिति को उन लाखों हिन्दुओं-सिखों की दृष्टि से देखने का यत्न करें जो भारत विभाजन के फलस्वरूप मारे गए, बेघर और शरणार्थी हुए। तब हम श्री अरविन्द की बात को गाँधी की अहिंसा के संदर्भ में समझ सकते हैं। अहिंसा की गाँधीवादी धारणा को समाज और राजनीति पर लागू करना आततायियों का राज स्वीकार करने से तनिक भी भिन्न नहीं है। गाँधी की जय-जयकार करने वाले शुद्ध-चित्त विद्वान इस सत्य को पहचानने का कष्ट करें।

आत्म बलिदान या सामूहिक आत्महत्या

अपनी सभी चर्चाओं में 'सत्याग्रह' और 'अहिंसा' को गाँधी एक दूसरे का पर्याय बना देते हैं। उदाहरण के लिए, ''मनुष्य जाति को मुक्ति और शक्ति दिलाने वाला एक मात्र उपाया सत्याग्रह ही है। हम मानते हैं कि

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

अहिंसा का गांधी दर्शनः एक आलोचना

- शंकर शरण
प्रोफेसर, समाज विज्ञान विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

गोली मारने की अपेक्षा गोली से मरने... '' आदि। जबकि हिन्दू चिंतन में यह नितांत दो स्वतंत्र अवधारणाएं है। सत्य गुणातीत है। जबकि हिंसा और अहिंसा सापेक्ष गुण हैं। किसलिए और किस पर बल का प्रयोग हुआ, इसके आधार पर ही हिन्दू दृष्टि में सिकी को हिंसा, अथवा किसी अहिंसा को कायरता कहा जाता है। हिन्दी स्वराज में 'बल' और 'हिंसा' को लगभग एक माना गया है। गाँधी शरीर-बल को 'पुशु-बल' कहकर लांछित करते हैं। फिर आगे उन्होंने 'अहिंसा को आत्म-बल, आत्मक-बल को 'प्रेम' और अंततः ईश्वर का समानार्थी बना दिया। यह सब सुनने में चाहे अच्छा लगे, किंतु यह हिन्दू चिंतन नहीं है।

असिा की गाँधीवादी व्याख्या रामायण और महाभारत के नितांत विरूद्ध है। सारे के सारे हिन्दू देवी और देवता अस्त्र-शस्त्र धारी हैं। सभी पौराणिक कथाएं और महाकाव्य दुष्टों का वध करने और पापियों को दंडित करने की गाथाओं से ओत-प्रोत हैं। योगीश्वर कृष्ण और धर्मराज युधिष्ठर ने भी शस्त्र उठाकर धर्म-रक्षा की थी। व में ऋषियों के यज्ञ का ध्वंस करने वाले राक्षसों से उनकी रक्षा सभी राजकुमार धनुष-बाण से ही करते थे। कहीं भी असुरो, राक्षसों या पापियों ''के मन से बुराई का बीज ही निकाल देने'' के विचार तक का संकेत नहीं मिलता है।

भारतीय सभ्यता की धर्म-प्राणता में शौर्य का भी ऊँचा स्थान रहा है। हिन्दू शिक्षा-दीक्षा में अस्त्र-शस्त्र संचालन का प्रमुख स्थान था। उसे धर्म, दर्शन और नैतिकता के ज्ञान से दूर या हीन नहीं माना गया। गुरु वशिष्ठ हों या गुरु द्रोणाचार्य, उनकी दी गई शिक्षाओं में अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा का प्रतुख स्थान था।

किसलिए क्या वे सत्य अहिंसा और धर्म के महान ज्ञाता नही थे, वस्तुतः गाँधीजी की अहिंसा रूसी ईसाइयत से गहरे प्रभावित थी। वह हिन्दू विचार नही था।

राजनीति ओर समाज में अहिंसा का सिद्धांत हिंसक के सामने निरुपाय 'निरुपाय 'आत्म-बलिदान'- अथवा सामूहिक आत्महत्या - के सिवा कुछ नही रह जाता। पूर्वी बंगाल और पश्चिमी पंजाब के लाखें हिन्दुओं ओर सिखों को यही करना पड़ा, क्योंकि वे संगइित हिंसा का प्रतिकार करने के लिए तैयार नहीं थे। उलटे विभाजन के विरुद्ध गाँधी के आश्वासन तथा अहिंसा की महान शक्ति के प्रचार के समक्ष संगठित, सशस्त्र प्रतिकार के बारे में सोचना भी मानों गाँधी का अपमान करना ही था। ध्यान रहे, जब गाँधी स्वयं रंगमंच पर मौजूद थे। वे तब भी निरंतर अहिंसा का पाठ जिदपूर्वक पढ़ाते रहे जबकि संगठित, सामूहिक, एकतरफा हिंसा बार-बार हो रही थी।

उदाहरण के लिए, बंग-भंग के बाद हुए स्वदेशी (1905-09) को दबाने के लिए पूरे बंगाल (जो आज का पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा तथा संपूर्ण बंगला-देश मिलाकर था) में मुस्लिम गुंडों का उपयोग अंग्रेज सरकार ने किया था। उसके बाद खलीफत आंदोलन के समय पेशावर, गोपला, नागपुर और कई स्थानों पर हिन्दुओं का सामूहिक संहार, बलात्कार और धर्मांतरण किया गया। यह इतनी नृशंसता से हुआ था कि स्वयं गाँधी को मानना पड़ा कि उन्होंने हिन्दुओं को झूठा आश्वासन देकर विश्वासघत किया। महादेव भाई के समक्ष एक दिन अपनी भूल स्वीकार करते हुए गाँधी सितंबर 1924 में कहते है,

''मेरी भूल हाँ, मुझे दोषी कहा जा सकता है कि मैंने हिन्दुओं के साथ विश्वासघात किया। मैंने उन से कहा था कि वे इस्लामी पवित्र स्थानों खलीफत, की रक्षा के लिए अपनी संपत्ति व जीवन मुसलमानों के हाथ में सौंप दें। आज भी मैं उनसे अहिंसा पर चलने के लिए कहता हूँ, कि वे मर जाएं, मारें नहीं। और इसके बदले मुझे क्या मिला कितने मंदिर अपवित्र किए गए कितनी बहनें मेरे पास अपना दुःख लेकर आई जैसा मैं कल हकीमजी अजमल खाँ, को कह रहा था, हिन्दू स्त्रियाँ मुलसमानों के प्रति मैत्री का सुफल प्राप्त होगा। मैंने उन्हें कहा था कि वे बिना परिणामों की इच्छा के मुसलमानों को मित्र बनाने का प्रयास करें। उस भरोसे को पूरा करने की सामथर्य मुझमें नहीं है। और फिर भी मैं आज भी हिन्दुओं से यही कहूँगा कि मारने की अपेक्षा मर जाएं।''[24]

जैसा परवर्ती इतिहास ने दिखाय, इस के बाद भी गाँधी अहिंसा संबंधी अपनी उसी जिद पर बने रहे। स्वयं उनके शब्दों में, जिस चीज की उनमें 'सामर्थ्य नहीं' थी, वही दावा करते रहे। किंतु संगठित हिंसा के समक्ष अहिंसा के भरासें किसी के ससम्मान जीने का मर्ग नहीं खोज पाए। वह भूल स्वीकारने के बाद वह

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

अहिंसा का गांधी दर्शनः एक आलोचना

- शंकर शरण
प्रोफेसर, समाज विज्ञान विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

चौबीस वर्ष और जीवित, सक्रिय रहे। उसी तुष्टीकरण पर चलते और निरंतर वही फल पाते, जो खलीफल के बाद मिलाथा। मुस्लिम लीग की धमकियाँ और सड़क पर उतर कर आग लगाने की प्रवृत्ति, जिन्ना का 'डायरेक्ट एक्शन', अंततः देश विभाजन और लाखों-लाख हिन्दुओं का संहार, विस्थापन और शरणार्थियों में बदल जाना। यह सब तक हुआ जब कि हर हाल में अहिंसा की एकतरफा टेक रखने का फल पहले भी कई बार देखा जा चुका था। कि उससे किसी उद्धत, अहंकारी आक्रमणकारी का हृदय नहीं बदलता। संगठित सशस्त्र गिरोहों या हिंसक भीड़ को तो कभी नहीं।

इसीलिए डॉ0 भीमराव अंबेदकर ने इस पर आश्चर्य व्यक्तत किया था कि जिस हिन्दू जनता में गाँधी को महात्मा बनाया, उस के हितों को वह एक-दो मुस्लिम नेताओं की इच्छा पर भी पूरी तरह बलिदान करने के लिए तैयार रहते थे। गाँधीजी के ऐसे कामों की सूची देते हुए डॉ0 अंबेदकर लिखते हैं, ''केवल यही सब नहीं जो गाँधीजी ने हिन्दु-मुस्लिम एकता बनाने के लिए किया। उन्होंने कभी मुसलमोनों को उन बहुत अपराधों का हिसाब देने के लिए नहीं कहा जो हिन्दू जनता के विरुद्ध किए जाते थे।' यह अपरोध संगठित हिंसा के ही विविध रूप थे, जिसका गाँधी के सिद्धांत के पास कोई उपाय नहीं था। जो था, उसे अकर्मण्यता ही कहा जा सकता है।

हिन्द स्वराज में गाँधी साफ लिखते हैं, जिसे वे बाद में दुहराते भी रहे, कि यदि हिंसा पर उतारू कोई शक्ति या व्यक्ति समझाने पर भी न माने तो कुछ नहीं किया जा सकता। उनकी 'नीति' यही थी कि दूसरे पक्ष की हिंसा, उत्पीड़न बंद कर दे। एक जबर्दस्त भौतिक शक्ति आर अपने भरासे खड़ी मानव आत्मा के बीच की लड़ाई में अंत में प्रायः उस शक्ति की टुकड़ियाँ अपना पाला छोड़ कर इस आत्मा के पक्ष में आ जाएंगी।''[25] किन्तु यदि ऐसा न हो तब वैसी स्थिति में, हिन्द स्वराज के अनुसार, अहिंसक सत्याग्रही के पास इसके बाद उस हिंसक व्यक्ति को अपने मन की करने देने और स्वयं मर जाने के अलावा कोई मार्ग नहीं हें इसे, जैसी परिस्थिति हो, किसी के उत्पीड़न को चुपचाप देखना, आत्महत्या या अकर्मण्यता के अतिरिक्त कुछ और संज्ञा नही दी जा सकत। इसे कोई महान विचार मानना चाहे तो माने, किंतु भारतीय धर्म-परंपरा इसके कहीं-अनुशंसा नहीं करती।

किसी भी रूप में देखें तो हिन्द स्वराज में प्रस्तुत अहिंसा सिद्धांत नितांत निष्फल है। इसे गाँधी भी समझते थे। इसीलिए परिणाम के प्रश्न को अग्रह पूर्वक रखे जाने पर वे सदैव यही कहते थे कि 'मारने की अपेक्षा मर जाएँ। जो उन्होंने 1924 में पहले हिंदुओं का कहा, वही उन्होंने 1947 में पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल के हिंदुओं को कहा थ। यही सलाल उन्होंने ब्रिटेन के लोगों को अपनी ओर से दी जब उन पर हिटलर का आक्रमण आसन्न दिख रहा था। यही उन्होंने यहूदियों के लिए कहा था जिन्हें 1940-1945 के बीच जर्मन नाजियों और रूसी कम्युनिस्टों ने यूरोप में लाखों की संख्या में मौत के घाट उतार दिया। गाँधी की जीवनी लिखने वाले जर्मन लेखक लुई फिशर ने 1946 में उनसे पूछा भी कि इतनी बड़ी संख्या में यहूदी मारे गए, क्या उनका हथियार उठाकर प्रतिकार करना उचित न होता उत्तर में गाँधी ने कहा, नहीं। यानी वे निरपराध लाखों यहूदी, आबाल-वृद्ध-नारी- सुचा सभी असहाय मर गए, यही अच्छा हुआ। यदि वे अस्त्र-शस्त्र उठाकर नाजियों या कम्युनिस्टों का प्रतिकार करते तो गलत करते। अर्थात् अहिंसा के लिए सामूहिक, बिना शर्त आत्महत्या-यही राजनीतिक व्यवहार में अहिंसा का गाँधीवादी सिद्धांत था।

अहिंसा की गाँधीवादी धारणा को समाज और राजनीति पर लागू करना राक्षसी राज स्वीकार करने से तनिक भी भिन्न नहीं है।

हिन्द स्वराज में गाँधी ने अहिंसा के संबंध में विभिन्न धर्मों की स्थितिए भारत के गलाम बन जाने के कारण, अंग्रेजों को भगाने के लिए हिंसा के प्रयोग के बारे में भारतीय जनता की इच्छा आदि के बारे में भी बाते कही है, वह सही नही है।

कई स्थलों पर गाँधी अंतर्विरोधी बातें भी कहते है। हथियार उठाना अनुचित या 'लंबा समय' लगेगा, इसलिए न सोंचे (15वाँ अध्याय)। नैतिक रूप से या आर्थिक रूप से उपयुक्त, दोनों दो बातें है। हिन्दी स्वराज में उल्लेख है कि भारत में हिन्दु-मुस्लिम बैर रहा है, जिस का अंग्रेजों ने उपयोग किया। किंतु 1931 में लंदन में

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

अहिंसा का गांधी दर्शनः एक आलोचना

- शंकर शरण
प्रोफेसर, समाज विज्ञान विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

गोल-मेज कांफ्रेंस में गाँधी ने कहा कि यहाँ अग्रजों के आने से पहले कोई हिन्दु-मुस्लिम झगड़ा नही था। कि इसकी उत्पत्ति अंग्रेजों के आगमन के बाद हुई। इसी प्रकार भारतीय जनता अत्याचारियों को हथ्यिार उठाकर दंडित करना नहीं चाहेगी - हिन्द स्वराज में लिखी यह बात भी गलत है। भारत में आम तौर पर लोग पापियों, बदमाशों को दंडित करने की अनुशंसा करते हैं। बल्कि जब, जहाँ अवसर मिला स्वयं यह करने से नहीं चूकते।

निस्संदेह, अहिंसा की गाँधी धारणा न केवल भारतीय धर्म-चिंतन के नितांत विपरीत थी, बल्कि वह अपने-आप में दोषपूर्ण थी। जैसा डॉ0 लोहिया ने अपने लेख ''गाँधीजी के दोष'' में लिखा भी है, पंद्रह सदियों की पराजित मानसिकता और कायरता से अकस्मान मुक्ति पा लेता (एक ऐसी मौलिक दूर-दृष्टि जिसके लिए लोहिया को प्रर्याप्त श्रेय नही मिला है) - बल्कि परिणाम स्वरूप होने वाली हिंसा बहुत ही कम होती। अतः अहिंसा के नाम पर हर उग्र इस्लामी माँग स्वीकार करते जाने से उलटे और विशाल संख्या में निर्दोष, निहत्थे लोग मारे गए। लोहिया के अनुसार गाँधीजी को यह मालुम था, इसलिए उनका दोष और भी गंभीर हो जाता है।

यदि हिंसा और अहिंसा पर गीता और रामायण की धर्म-शिक्षा और क्षत्रियों के धर्म को उपेक्षित न किया गया होता तो आत्मरक्षा के लिए, दुष्टों के दलन के लिए और पापियों के संहार के लिए अस्त्र-शस्त्र के उपयोग को स्वीकार किया जाता। तब कांग्रेस द्वारा वैसी तैयारी होती। तब पिछले नब्बे वर्ष के भारतीय घटनाक्रम में तुलनात्मक रूप से कोई बड़ी हिंसा ही न होती। संभवतः 1962 का चीनी आक्रमण भी न होता। क्योंकि तब हम 'हम शांति-प्रेमी हैं, इसलिए दूसरा हम पर आक्रमण क्यों करेगा, अथवा ''अहिंसा में पत्थर को भी पिघलाने की शक्ति को स्वभाविक रूप से पता होता कि उसे उसी भाषा में प्रतिरोध मिलेगा। यदि ''विनाशाय च दुष्कृताम'', ''दैत्यवंश निकंदनम्'' और ''रामेणाभिहता निशाचरचम्'' के आदेर्श को ऊपर रखा जाता तो 1946-47 में ठीक वही चीज और विराट् पैमाने पर दुहराई न जा सकी होती जिसका ऊपर महादेवी भाई के समक्ष अपनी भूल स्वीकार करने में गाँधी उल्लेख करते है। तब डॉ0 राममनोहर लोहिया जैसे असंख्य विचारशील भारतीयों को 'हिन्दू कायरता' पर आँसू न बहाने पड़ते।

यही कारण है कि आज भी नेहरूवादी हों या गाँधीवादी - सभी विद्धान, नेता और एक्टिविस्ट हिन्द स्वराज और अहिंसा की महानता के कागली पुल ही बाँधते रहे हैं। वे किसी वास्तविक चोर, आतंकवादी, जिहादी, माओवादी या बुरे आदमी से वास्तव में वह दलीलें करने नहीं जाते जो करने की तजवीज हिन्दह स्वराज में बिना शर्त रखी गई है। यह तजवीज कि उस आदमी के भीतर से बुराई का ''बीज ही निकाल दें''। यह सबसे बड़ी विडंबना है कि अपने जिस विचार को गाँधी ने अक्सीर की तरह जीवन भर दुहराया, उसे वह कभी किसी वास्तविक ''आदमी'' - उनके परम मित्र मौलाना मुहम्मद अली, अब्दुल बारी या जिन्ना आदि - के साथ सफल प्रयोग कर के नहीं दिखा सके। जब गाँधी ही न लिखा सके, तो स्वभाविक है कि आज के उनके किसी प्रशंसक या अनुयायी को भी यह नही सूझता कि किसी नक्सली या मुजाहिद के 'भीतर से वह बीज निकाल देने' की सोचे! तब अहिंसा का सिद्धांत किसके लिए था या है।

उपसंहार

गाँधी दर्शन और व्यवहार की एक विडंबना यह भी है कि वह अपने विचारों पर सदैव स्वयं ही मोहित दिखता है - परिणम या दूसरों की समीक्षा से काई आलोचनात्मक मूल्यांकन स्वीकार करने के लिए वह तैयार नहीं है। हिन्द स्वराज में ही इसकी ध्वनि दिखती है। किंतु यदि सिद्धांत का मूल्य उसकी व्यवहारिक उपलब्धि से निकलने का प्रयास करें, तो भारतीय जनता के लिए गाँधीवादी सत्याग्रह व अहिंसा को कुछ हितकर नहीं कहा जा सकता। खलीफत के साथ जोड़े दिए असहयोग आंदोलन से आरंभ करके, हिन्दु-मुस्लिम एकता के लिए किए गए सभी प्रयन्त्र, मुस्लिम लीग, जिन्ना ओर ब्रिटिश सरकार के साथ मेल ओर संघर्ष के सभी दौर, अंततः देश का विभाजन (जिसमें दस लाख देशवासियों का जानवरों की तरह मारा जाना, एक करोड़ का विस्थापन तथा पचहत्तर हजार स्त्रियों का शील-हरण भी शामिल है) - 1919 से 1947 के बीच इनमें गाँधी नेतृत्व की स्थूल उपलब्धि क्या है।

केवल राजनैतिक पक्ष ही नहीं, साबरमी आश्रम या बुनियादी शिक्षा के उनके सामाजिक प्रयोग भी गाँधी के जीवन काल में ही अपने अस्वाभाविक पहलुओं के साथ ही दिखते थे। इसलिए भी गाँधी के स्वयं चुने हुए

SHODH SANCHAYAN

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

अहिंसा का गांधी दर्शनः एक आलोचना

- शंकर शरण
प्रोफेसर, समाज विज्ञान विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

'उत्तराधिकारी' जवाहरलाल ने उनके किसी विचार, संस्था या प्रयोग को नहीं अपनाया। उलटे नितांत विपरीत विचारों, नीतियों, कार्यक्रमों का अरंभ स्वतंत्र भारत में किया। गाँधी के जाने के बाद सभी गाँधीवादी संस्थानों, लेखकों आदि के व्यवहारतः नेहरुवादी हो जाने में कोई विशेष देर नहीं लगी। एक बाह्य शब्दोंच्चार में बदलने में कठिनाई ही क्या होनी थी।

इतनी सहजता से यह कैसे संभव हुआ अन्य जो कारण हों, एक यह भी था कि सत्य, अहिंसा और निष्क्रिय प्रतिरोध के सभी गाँधी रूप प्रायः बाह्यचारों तक ही सीमित थे। स्वयं कांग्रेस संगठन की स्थिति ऊपर के अंध-अनुपालन के सिवा कुछ नहीं बची। लेनिन की तरह गाँधी ने भी अपने सांगठनिक आचरण को किसी भी स्पष्ट सिद्धांत या नियम के अधीन नहीं रखा। संगठन के नियम दूसरों के लिए थे, गाँधी के लिए नहीं। वह किसी भी नियम या व्यवस्था को कभी भी किनारे करके कभी 'अंतरात्मा' की आवाज पर, कभी बिना कोई कारण बताए, कुछ भी निर्णय ले सकते थे और अपने सहयोगियों समेत पूरी कांग्रेस पर थोपतै थे। अंतिम लगभग लगभग दो दशक तो गाँधी बिना कांग्रेस के सदस्य तक रहे उसमें कभी भी, किसी भी बिंदु पर हस्तक्षेप कर सकते थे। देश के विभाजन का निर्णय तक इसी तरह उन्होंने कांग्रेस कार्यसमिति से जोर-जबर्दस्ती पास कराया। वे न तो उसके सदस्य थे, न समिति का बहुमत उसके पक्ष में थी। वे केवल नेहरू की मदद करने के लिए बैठक में चले गए, जो किसी तरह विभाजन प्रस्ताव वहाँ पास कराना चाहते थे।

विचारों में ही नहीं, संगठन में भी गाँधी सदैव एक डिक्टेटर रहे। उनसे असहमति रखने वाले अनेक महत्वपूर्ण लोगों को कांग्रेस छोड़नी पड़ी। साबरमती आश्रम में भी सबकी इच्छा कुछ भी हो, खान-पान से लेकर दूसरे व्यवहार तक गाँधी ही तय करते थे। विशाल जनता के लिए गाँधी का जो रूप हो, किसी संस्था या संगठन में एक तानाशाह से निभन्न किसी रूप में काम करते गाँधी को नहों देखा जा सका। इस व्यवहार का उनके अहिंसा के घोषित सिद्धांत से ताल-मेल नहीं था। गाँधी के आश्रम, पार्टी और परिवार के लोगों तक कोई कई बार अनिच्छापूर्वक मानसिक, शारीरिक कष्ट उठाना पड़ता था। चर्खा चालने से लेकर, शौचालय साफ करने और मिर्च न खाने तक। न चाहते हुए भी यह सब करने की विवशता स्वयं गाँधी की कुछ उक्ति के अनुसार अनिच्छुक लोगों पर बेजा हिंसा ही थी। पर गाँधी अपने अंतर्विरोधों का समाधान नहीं करते थे।

संभवतः इसी से कांग्रेस में 'हाई-कमान' की वह संस्कृति पनपी जो सदैव ऊपर एक तुलनीय व्यक्ति की ओर देखते रहने के सिवा व्यवहार में किसी और तरह कुछ तय नहीं कर पाती। बिना किसी अतिरंजना के खतरे के कहा जा सकता है कि आज जैसे अपरिभाषित शक्ति सोनिया गाँधी रखती और व्यवहार करती हैं, तथा जिसे कांग्रेस सहज स्वीकार करती है, यह सांगठनिक मॉडल महात्मा गाँधी की देन है। निस्संदेह इसके लाभ हैं। पर हानि भी है। कि कांग्रेस कभी राष्ट्रीय, सामाजिक प्रश्नों पर वास्तविक चिंतन और गंभीर नीति-निर्माण करने लायक संस्था नहीं बन सकी।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. श्री अरविन्द, पूर्व का संदर्भ 5 लाएँ, पृ0 98
2. यह 28 मार्च 1923 को श्री अरविन्द ने अपने शिष्यों के साथ बात-चीत में कहा था। वही, पृ0 288
3. वही, पृ0 289
4. उदाहरण के लिए 'छात्रों और शिक्षकों के समक्ष भाषण' में, सूर, 6 अक्टूबर 1920
5. जिन्ना की जीवनी लिखने वाले सहानुभूति-पूर्ण स्टैनले वोलपर्ट ने उसका संकेत इन शब्दों में किया है, 'उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रांत के पठानों से लेकर मलाबार के मोपला तक, कश्मीर से लेकर ढाका तक, दक्षिण एशिया के मुसलमानों ने अपने खलीफा की हार का क्रोध अपने पड़ोसी हिन्दुओं पर उतारा।'' जिन्ना ऑफ पाकिस्तान (न्यूयॉर्क-ऑक्सफोर्ड : यूनिवर्सिटी प्रेस, 1984), पृ0 83. इस तथ्य को हिन्द स्वराज की उस दलील से एमझने का यत्न करें कि ''झगड़ा दो से ही हो सकता है। मुझे झगड़ा नहीं करना तो मुसलमान क्या कर सकता है?'' (अध्याय 10)
6. श्री अरविन्द, ऊपर सं0 5 पृ0 298
7. अपने शिष्यों के साथ वार्ता में 22 जून 1926 को कही गई। वही, पृ0 403

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

अहिंसा का गांधी दर्शनः एक आलोचना

- शंकर शरण
प्रोफेसर, समाज विज्ञान विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

8. श्री अरविन्द, ऊपर संदर्भ सं. 5, पृ. 403-04
9. एक वार्ता में 28 नवंबर 1940 को की गई। वही, पृ. 732
10. श्री अरविन्द, भारत का पुनर्जन्म (मैसूर : मीरा अदिति, 2003), पृ. 47
11. पवन कुमार गुप्ता, महात्मा गाँधी एक पुनरावलोकन (मसूरी: सिद्ध, 2005) में उद्धृत। पृ. 16
12. महादेव देसाई, डे टु डे विद गाँधी, वॉल्यूम 4, पृ. 165
13. पवन कुमार गुप्ता, महात्मा गाँधी एक पुनरावलोकन (मसूरी: सिद्ध 2005) में उद्धृत।
14. ''टॉक विथ मनु गाँधी'', 14 जून 1947, कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, खंड 88, (अहमदाबाद : नवजीवन ट्रस्ट, 1983), पृ. 150, स्पीच एट ए.आई.सी.सी. मीटिंग'',

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN